श्री आत्मसिद्धि शास्त्र

उपोद्घात

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत;
समझाया वह पद नमन, श्री सद्गुरु भगवंत। (1)

वर्तमान इस काल में, मोक्षमार्ग बहु लुप्त;
विचार करें आत्मार्थी जन, कहते धर्म अगुप्त। (2)

कोई क्रियाजड़ में रहे, शुष्क ज्ञान में कोई;
माने मार्ग मोक्ष का, करुणा देख के होय। (3)

बाह्य क्रियाओं में रचे, अंतर्भेद न कोय;
ज्ञानमार्ग निषेधते, वो ही क्रिया जड़ होय। (4)

बंध मोक्ष है कल्पना, कहते वाणी में;
वर्ते मोहावेश में, शुष्क ज्ञानी हैं वे। (5)

वैराग्यादि सफल तब, जब संग आतमज्ञान;
और हो आतमज्ञान की, प्राप्ति हेतु निदान। (6)

त्याग वैराग्य न चित्त में, होवे न आतमज्ञान;
अटके त्याग वैराग्य में, तो भूले निज भान। (7)

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वो;
वहाँ-वहाँ वैसा आचरण, आत्मार्थी जन वो। (8)

सेवे सद्गुरु चरण को, त्याग दे निज पक्ष;
पाए वह परमार्थ को, निजपद का ले लक्ष्य। (9)

आत्मज्ञान, समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग;
अपूर्व वाणी, परमश्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य। (10)

प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
ऐसा लक्ष्य हुए बिना, उगे न आत्म विचार। (11)

सद्गुरु के उपदेश बिन, समझ न आए जिनरूप;
समझे बिन उपकार क्या? क्यों समझे जिनस्वरूप? (12)

आत्मादि अस्तित्व के, जो निरूपक शास्त्र;
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहीं, वहाँ आधार सुपात्र। (13)

अथवा सद्गुरु ने कहा, जो अवगाहन काज;
वे सब नित्य विचार करे, करके मतांतर त्याग। (14)

रोके जीव स्वछंद तो, पाए अवश्य मोक्ष;
पाया ऐसे अनंत ने, कहते जिन निर्दोष। (15)

प्रत्यक्ष सद्गुरु योग से, स्वछंद रुकता जाए;
अन्य उपाय करते हुए, प्रायः दुगुना होय। (16)

स्वछंद, मत आग्रह त्यजे, वर्ते सद्गुरु लक्ष्य;
समकित उसको कह गए, कारण बने प्रत्यक्ष। (17)

मानादिक शत्रु महा, निज मत से नहीं जाए;
जाते सद्गुरु शरण में, अल्प प्रयास से जाए। (18)

जो सद्गुरु उपदेश से, पाया केवलज्ञान;
गुरु रहे छद्मस्थ पर, विनय करे भगवान। (19)

ऐसा मार्ग विनय का, कहते श्री वीतराग;
मूल हेतु इस मार्ग का, समझे कोई सौभाग्य। (20)

असद्गुरु उस विनय का, लाभ जो लेते कोई;
महामोहनीय कर्म से, डूबे भव जल में ही। (21)

होय मुमुक्षु जीव तो, समझे ऐसा विचार;
होय मतार्थी जीव तो, करे उलट निर्धार। (22)

होय मतार्थी जीव तो, होवे न आतम लक्ष्य;
वही मतार्थी लक्षण, यहाँ कहे निर्पक्ष। (23)

मतार्थी लक्षण

बाह्य त्याग पर ज्ञान नहीं, वे माने गुरु सत्य;
अथवा निज कुल धर्म के ही, गुरु में करें ममत्व। (24)

जो जिन देह प्रमाण और, समवसरण आदि सिद्धि;
वर्णन समझे जिन का, रोक रखी निज बुद्धि। (25)

प्रत्यक्ष सद्गुरु योग में, वर्ते दृष्टि विमुख;
असद्गुरु को दृढ़ करे, निज मानार्थे मुख्य। (26)

देवादि गति भेद में, जो समझे श्रुतज्ञान;
माने निज मत वेष का, आग्रह मुक्ति निदान। (27)

समझे स्वरूप न वृत्ति का, करे व्रत अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थ को, लेने लौकिक मान। (28)

अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्द में खोय;
लोपे सद् व्यवहार को, साधन रहित होय। (29)

ज्ञान दशा पाए नहीं, साधन दशा न कोई;
पावे उनका संग जो, वो डूबे भव में ही। (30)

वह भी जीव मतार्थ में, निज मानादि में जाए;
पाए नहीं परमार्थ को, अनधिकारी कहाए। (31)

नहीं कषाय उपशांतता, नहीं अंतर वैराग्य;
सरलपना न मध्यस्थता, वह मतार्थी दुर्भाग्य। (32)

लक्षण कहे मतार्थी के, मतार्थ दूर हो, काज;
अब कहूँ आत्मार्थी के, आत्म-अर्थ सुखसाज। (33)

आत्मर्थी लक्षण

आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना, वही सच्चे गुरु होय;
बाकी कुलगुरु कल्पना में, आत्मार्थी नहीं खोय। (34)

प्रत्यक्ष सद्गुरु प्राप्ति का, माने परम उपकार;
तीन योग एकत्व से, वर्ते आज्ञाधार। (35)

एक होय तीन काल में, परमार्थ का पंथ;
प्रेरे उस परमार्थ को, वह व्यवहार समंत। (36)

ऐसे विचारे अंतर से, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग। (37)

कषाय की उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भव-खेद, प्राणीदया, वहाँ आत्मार्थ निवास। (38)

दशा न ऐसी जब तक हो, जीव बने नहीं योग्य;
मोक्षमार्ग पावे नहीं, मिटे न अंतर रोग। (39)

आवे जहाँ ऐसी दशा, सद्गुरु बोध सुहाय;
बोध से हो सुविचारणा, वहाँ प्रकटे सुखदाय। (40)

जहाँ प्रकटे सुविचारणा, वहाँ प्रकटे निजज्ञान;
उस ज्ञान से क्षय मोह का हो, पाए पद निर्वाण। (41)

उपजे वह सुविचारणा, मोक्ष मार्ग समझ आए;
गुरु-शिष्य संवाद से, षट्पद यहाँ कहाय। (42)

षट् पद नाम कथन

'आत्मा है', 'वह नित्य है', 'है कर्त्ता निजकर्म';
'है भोक्ता' और 'मोक्ष है', 'मोक्ष उपाय सुधर्म'। (43)

षट्स्थानक संक्षेप में, षट्दर्शन भी वे;
समझाने परमार्थ को, कहे ज्ञानी ने ये। (44)

प्रथम पद – आत्मा है

शंका – शिष्य उवाच

नहीं दृष्टि में आता है, नहीं जानूँ कुछ रूप;
दूजा भी अनुभव नहीं, तभी न जीव स्वरूप। (45)

अथवा देह ही आत्मा, अथवा इन्द्रिय प्राण;
मिथ्या भिन्न है मानना, नहीं अलग है प्रमाण। (46)

यदि जो आत्मा होय तो, जानूँ मैं नहीं क्यों?
जानूँ जो वो होय तो, घट-पट आदि ज्यों। (47)

तो फिर है नहीं आत्मा, मिथ्या मोक्ष उपाय;
यह अंतर शंका रही, समझाओ सदुपाय। (48)

समाधान – सद्गुरु उवाच

भासे देहाध्यास से, आत्मा देह समान;
पर वो दोनों भिन्न है, लक्षण प्रकट प्रमाण। (49)

भासे देहाध्यास से, आत्मा देह समान;
पर वो दोनों भिन्न है, जैसे असि और म्यान। (50)

जो द्रष्टा है दृष्टि का, जो जाने है रूप;
अबाध्य अनुभव जो रहे, वो है जीव स्वरूप। (51)

है इन्द्रिय प्रत्येक को, निज निज विषय का ज्ञान;
पाँच इन्द्रिय के विषय का, पर आत्मा को भान। (52)

देह न जाने आत्मा को, जाने न इन्द्रिय, प्राण;
आत्मा की सत्ता से ही, सब वे प्रवर्ते जान। (53)

सर्व अवस्था के विषय, न्यारा सदा रहे जान;
प्रकट रूप चैतन्यमय, है यह सदा प्रमाण। (54)

घट-पट आदि जाने तू, तभी तो लेता मान;
जाननहार को माने नहीं, कहिए कैसा ज्ञान? (55)

परम बुद्धि कृष देह में, स्थूल देह मति अल्प;
देह होय जो आत्मा, बने न यह विकल्प। (56)

जड़ चेतन का भिन्न है, केवल प्रकट स्वभाव;
एकपना पावे नहीं, तीन काल द्वय-भाव। (57)

आत्मा की शंका करे, आत्मा खुद ही आप;
शंका को करता स्वयं, अचरज यह अमाप। (58)

दूसरा पद – आत्मा नित्य है

शंका – शिष्य उवाच

आत्मा के अस्तित्व का, आपने कहा प्रकार;
संभव इसका होता है, अंतर किया विचार। (59)

दूसरी शंका होती वहाँ, आत्मा नहीं अविनाश;
देह योग से उपजे, देह वियोग से नाश। (60)

अथवा वस्तु क्षणिक है, क्षण क्षण पलटे जाए;
इस अनुभव से भी नहीं, आत्मा नित्य जान पाए। (61)

समाधान – सद्गुरु उवाच

देह मात्र संयोग है, और जड़, रूपी, दृश्य;
चेतन की उत्पत्ति लय, किसके अनुभव वश? (62)

जिसके अनुभव वश है, उत्पन्न लय का ज्ञान;
वह उससे भिन्न हुए बिना, होवे न कभी भी भान। (63)

जो संयोग को देखिए, वे सब अनुभव दृश्य;
उपजे नहीं संयोग से, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष। (64)

जड़ से चेतन उपजे, चेतन से जड़ होय;
ऐसा अनुभव किसी को, कहीं कभी न होय। (65)

कोई संयोगों से नहीं, जिसकी उत्पत्ति होय;
नाश न उसका किसी में भी, तभी तो नित्य सदाय। (66)

क्रोधादि तरतम्यता, सर्पादि में होय;
पूर्वजन्म संस्कार ये, जीव नित्यता होय। (67)

आत्मा द्रव्य नित्य है, पर्याय पलटाय;
बालादि वय तीन का, ज्ञान एक को होय। (68)

अथवा ज्ञान क्षणिक का, जाने जाननहार;
जाननहार क्षणिक नहीं, कर अनुभव निर्धार। (69)

कभी किसी भी वस्तु का, होय न पूरा नाश;
चेतन पाए नाश तो, किसमें मिले, तलाश। (70)

तीसरा पद – आत्मा कर्म का कर्त्ता है

शंका – शिष्य उवाच

कर्त्ता जीव न कर्म का, कर्म ही कर्त्ता कर्म;
अथवा सहज स्वभाव या, कर्म जीव का धर्म। (71)

आत्मा सदा असंग और करे प्रकृति बंध;
अथवा ईश्वर प्रेरणा, उससे जीव अबंध। (72)

तो फिर मोक्ष उपाय का, समझ न हेतु आए;
कर्म और कर्त्तापना, तो नहीं, तो नहीं जाए। (73)

समाधान – सद्गुरु उवाच

होय न चेतन प्रेरणा, कौन ग्रहे तो कर्म?
जड़ स्वभाव नहीं प्रेरणा, देख विचार ये धर्म। (74)

जो चेतन करता नहीं, नहीं होते तो कर्म;
तो फिर सहज स्वभाव नहीं, और नहीं जीव धर्म। (75)

केवल होय असंग जो, भासत तुझे न क्यों?
असंग है परमार्थ से, पर निजभान से त्यों। (76)

कर्त्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव;
अथवा प्रेरक उन्हें कहें, ईश्वर दोष प्रभाव। (77)

चेतन जो निज भान में, कर्त्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहीं निज भान में, कर्त्ता कर्म प्रभाव। (78)

चौथा पद – आत्मा कर्मफल का भोक्ता है

शंका – शिष्य उवाच

जीव कर्म कर्त्ता कहो, पर भोक्ता नहीं वो;
क्या समझे जड़ कर्म ये, फल परिणाम क्या हो? (79)

फलदाता ईश्वर कहें, तो भोक्ता सिद्ध होय;
ऐसा कहें ईश्वरपना, ईश्वरपना ही खोय। (80)

ईश्वर सिद्ध हुए बिना, जगत नियम नहीं होय;
फिर शुभाशुभ कर्म का, भोग्य स्थान नहीं कोय। (81)

समाधान – सद्गुरु उवाच

भाव कर्म निज कल्पना, इसलिए चेतन रूप;
जीव वीर्य की स्फूरणा, ग्रहण करे जड़ धूप। (82)

जहर सुधा समझे नहीं, जीव खाए फल पाए;
ऐसे शुभाशुभ कर्म का, भोक्तापना समझाए। (83)

एक रंक और एक नृप, ये आदि जो भेद;
कारण बिना न कार्य ये, ये ही शुभाशुभ वेद्य। (84)

फलदाता ईश्वर की, इसमें न जरूरत हो;
कर्म स्वभाव से परिणमे, भोग से दूर हो। (85)

ये सब भोग्य विशेष के, स्थानक द्रव्य स्वभाव;
गहन बात है शिष्य यह, कहा संक्षेप में सार। (86)

पाँचवाँ पद – मोक्ष है

शंका – शिष्य उवाच

कर्त्ता भोक्ता जीव हो, पर उसका नहीं मोक्ष;
बीता काल अनंत पर, वर्तमान में दोष। (87)

शुभ करे फल भोक्ता, देवादि गति जाए;
अशुभ करे नरकादि फल, कर्म रहित न पाय। (88)

समाधान – सद्गुरु उवाच

जैसे शुभाशुभ कर्मपद, जाने सफल प्रमाण;
वैसे निवृत्ति सफलता, तभी तो मोक्ष सुजान। (89)

बीता काल अनंत जो, कर्म शुभाशुभ भाव;
वही शुभाशुभ छेदते, उपजे मोक्ष स्वभाव। (90)

देहादिक संयोग का, आत्यंतिक वियोग;
सिद्ध मोक्ष शाश्वत पद में, निज अनंत सुख भोग। (91)

छठा पद – मोक्ष का उपाय है

शंका – शिष्य उवाच

होय कदापि मोक्षपद, नहीं अविरोध उपाय;
कर्म काल अनंत के, कैसे छेदे जाएँ? (92)

अथवा मत दर्शन बहुत, कहें उपाय अनेक;
मत सच्चा है कौन सा, बने न यही विवेक। (93)

किस जाति में मोक्ष है, कौन से वेष में मोक्ष;
इसका निश्चय न बने, अनेक भेद हैं दोष। (94)

इससे ऐसा जान पड़े, मिले न मोक्ष उपाय;
जीवादि को जानकर, क्या उपकार ही पाय? (95)

पाँचों उत्तर से हुआ, समाधान सर्वांग;
समझूँ मोक्ष उपाय तो, उदय उदय सद् भाग्य। (96)

समाधान – सद्गुरु उवाच

पाँचों उत्तर से हुई, आत्मा विषय प्रतीत;
होगी मोक्ष उपाय की, सहज प्रतीत ये रीत। (97)

कर्मभाव अज्ञान है, मोक्षभाव निजवास;
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञान प्रकाश। (98)

जो जो कारण बंध के, वही बंध के पंथ;
वो कारण छेदक दशा, मोक्ष पंथ भव अंत। (99)

राग-द्वेष अज्ञान ये, मुख्य कर्म की गाँठ;
होय निवृत्ति जिससे, वही मोक्ष का मार्ग। (100)

आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित;
जिससे केवल पाइये, मोक्ष पंथ की रीत। (101)

कर्म अनंत प्रकार के, उसमें मुख्य आठ;
इनमें मुख्य मोहनीय, नाश करे कहूँ पाठ। (102)

कर्म मोहनीय भेद दो, दर्शन चारित्र नाम;
हरे बोध वीतरागता, अचूक उपाय मान। (103)

कर्मबंध क्रोधादि को, हरे क्षमादि से;
प्रत्यक्ष अनुभव सब करें, इसमें क्या संदेह? (104)

छोड़ के मत दर्शन का, आग्रह और विकल्प;
कहा मार्ग जो साध ले, जन्म हों उसके अल्प। (105)

षट्पद के षट्प्रश्न जो, पूछे कर के विचार;
इन पद की सर्वांगता, मोक्ष मार्ग निर्धार। (106)

जाति वेष का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय;
साधे जो मुक्ति मिले, इसमें भेद न कोय। (107)

कषाय की उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भव खेद अंतर दया, वह कहिए जिज्ञास। (108)

उस जिज्ञासु जीव को, मिले जो सद्गुरु बोध;
तो पाए समकित को, वर्ते अंतर शोध। (109)

मत दर्शन आग्रह त्यजे, वर्ते सद्गुरु लक्ष;
पाए शुद्ध समकित वो, जिसमें भेद न पक्ष। (110)

वर्ते निज स्वभाव का, अनुभव लक्ष प्रतीत;
वृत्ति बहे निजभाव में, परमार्थ समकित। (111)

वर्धमान समकित हो, टाले मिथ्याभास;
उदय होय चारित्र का, वीतराग पद वास। (112)

केवल निज स्वभाव का, अखंड वर्ते ज्ञान;
कहिए केवलज्ञान उसे, देह संग निर्वाण। (113)

कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जागृत हो भ्रम जाए;
ऐसे विभाव अनादि का, ज्ञान होय दूर जाय। (114)

छूटे देहाध्यास तो, नहीं कर्ता तू कर्म;
नहीं भोक्ता तू उसका, यही धर्म का मर्म। (115)

इसी धर्म से मोक्ष है, तू है मोक्ष स्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तू, अव्याबाध स्वरूप। (116)

शुद्ध, बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
दूसरा कहें अब और क्या? कर विचार तो पाय। (117)

निश्चय सर्व ज्ञानी का, यहाँ पे आकर समाय;
धरा मौन ये बोलकर, सहज समाधि में जाय। (118)

शिष्य बोध बीज प्राप्ति कथन

सद्गुरु के उपदेश से, आया अपूर्व भान;
निज पद निज में पा लिया, दूर हुआ अज्ञान। (119)

अनुभव निज स्वरूप का, शुद्ध चेतना रूप;
अजर अमर अविनाशी और, देहातीत स्वरूप। (120)

कर्त्ता भोक्ता कर्म का, विभाव वर्ते जहाँ;
वृत्ति बहे निजभाव में, हुआ अकर्त्ता वहाँ। (121)

अथवा निज परिणाम जो, शुद्ध चेतना रूप;
कर्त्ता भोक्ता उसका रहे, निर्विकल्प स्वरूप। (122)

मोक्ष कहा निज शुद्धता, पावे वही है पंथ;
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रंथ। (123)

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
इस पामर पर प्रभु किया, अहो! अहो! उपकार। (124)

क्या प्रभु चरणों में धरूँ, आत्मा से सब हीन;
वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तुं चरणाधीन। (125)

यह देहादि आज से, वर्तें प्रभु आधीन;
दास, दास मैं दास हूँ, आप प्रभु का दीन। (126)

षट्स्थानक समझाकर के, भिन्न बताए आप;
म्यान से तलवार तक, यह उपकार अमाप। (127)

उपसंहार

दर्शन षट् समाए हैं, इन षट् स्थानक में ही;
विचार कर विस्तार से, संशय रहे न कोई। (128)

आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान। (129)

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम ले, छेदो नहीं आत्मार्थ। (130)

निश्चय वाणी सुनकर, साधन न त्यागो;
निश्चय रखकर लक्ष्य में, साधन करते जाओ। (131)

नय निश्चय एकांत से, यहाँ नहीं हैं कहे;
एकांत से व्यवहार नहीं, दोनों साथ रहें। (132)

गच्छ मत की जो कल्पना, वह नहीं सद्व्यवहार;
भान नहीं निज रूप का, वह निश्चय नहीं सार। (133)

पूर्व में ज्ञानी जो हुए, वर्तमान में होय;
होंगे काल भविष्य में, मार्ग भेद नहीं कोय। (134)

सर्व जीव हैं सिद्धसम, जो समझे वो होय;
सद्गुरु आज्ञा, जिनदशा, निमित्त कारण होय। (135)

उपादान का नाम ले, वो जो त्यागे निमित्त;
पाए नहीं सिद्धत्व को, रहे भ्रांति में स्थित। (136)

मुख से ज्ञान कथन करे, अंतर छूटा न मोह;
वो पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानी का द्रोह। (137)

दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य;
होय मुमुक्षुता घट में, वो ही सदा सुजाग्य। (138)

मोह भाव क्षय होय जहाँ, अथवा होय प्रशांत;
वह कहिए ज्ञानी दशा, बाकी कहिए भ्रांत। (139)

सकल जगत है जूठनवत्, अथवा स्वप्न समान;
वह कहिए ज्ञानी दशा, बाकी कहिए भ्रांत। (140)

स्थानक पाँच विचार कर, छठे में वर्तें जो;
पाए स्थानक पाँचवाँ, इसमें नहीं संदेह। (141)

देह के संग जिनकी दशा, वर्तें देहातीत;
उन ज्ञानी के चरणों में, हो वंदन अगणित। (142)

Hindi translation by Sri Guru